ISSN : 2320-7604
RNI NO. : DELHIN/2008/27588
UGC Care Approved Research journal
October, 21, Part 1, Serial.No. 143

त्रैमासिक

बहुरि नहिं आवना

वर्ष-26
जनवरी, 2024 - मार्च, 2024
मूल्य : 200 रुपए

आजीवक महासंघ ट्रस्ट द्वारा निर्गत
संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य

Scanned with CamScanner

प्रधान संपादक
प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन'
संपादक
प्रो. दिनेश राम
सहायक संपादक
डा. अनिरुद्ध कुमार 'सुधांशु'
तान्या लाम्बा
भाषा सहयोग
डा. हेमंत कुमार 'हिमांशु'
डा. राजकुमार राजन
कानूनी सलाहकार
एड. सतपाल विर्दी
एड. संदीप दहिया

संपादकीय सलाहकार एवं विषय विशेषज्ञ
डा. वी. पी. सिंह, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, बलवीर माधोपुरी, प्रो. फूलबदन, प्रो. नामदेव, प्रो. सुजीत कुमार, डा. चन्देश्वर, डा. दीनानाथ, डा. मोहन चावड़ा, विजय सौदायी, डा. यशवंत वीरोदय, डा. सुरेश कुमार, डा. मनोज दहिया

अप्रवासी समाज, संस्कृति और साहित्य के विशेषज्ञ
ओमप्रकाश वाघा, नरेन्द्र खेड़ा, राम बाबू गौतम, डा. गुलशन नजरोवना जुगुरोवा, डॉ. बयात रहमातोव, डा. सिराजुद्दीन नूरमातोव

वर्ष : 16
अंक : 26
अंक : जनवरी, 2024 - मार्च, 2024
संस्थाओं के लिए प्रति कापी : 100 रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्क : 3000 रुपए
आजीवन सदस्यता : 10000 रुपए

संपादकीय पता
जे-5, यमुना अपार्टमेंट,
होली चौक, देवली,
नई दिल्ली-110080
मोबाइल : 09868701556
Email: bahurinahiawana14@gmail.com
Website-www.bahurinahiawana.in

Advertisement Rate
Full Page Rs. 20,000/-
Half Page Rs. 10,000/-
Qtr. Page Rs. 5,000/-
Back Cover Rs. 40,000/- (four colour)
Inside Front Rs.35,000/- (four colour)
Inside Back Rs. 35,000/- (four colour)

Mechanical Data
Overall Size 27.5 cms x 21.5 cms
Full Pages Print Area 24 cms x 18 cms
Half Page 12 cms x 18 cms or 24 cms x 9 cms
Qtr Page12 cms x 9 cms

•पत्रिका पूरी तरह अवैतनिक और अव्यावसायिक है।
•पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।
•अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है।
•'बहुरि नहिं आवना' के सारे भुगतान मनीआर्डर/चैक/बैंक ड्राफ्ट 'बहुरि नहिं आवना' के नाम से स्वीकृत किये जायेंगे।
•स्वामी, संपादक, प्रकाशक एवं मुद्रक प्रो. दिनेश राम की ओर से भारत ग्राफिक्स, सी-83, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली-20 द्वारा मुद्रित एवं एफ-345, लाडो सराय, नई दिल्ली-30 से प्रकाशित।
•'बहुरि नहिं आवना' में प्रकाशित लेखों में आये विचार लेखकों के अपने हैं जिन से संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

Scanned with CamScanner

न्याय की सामाजिक एवं आर्थिक अवधारणा–एक दृष्टि

–माधवेन्द्र तिवारी
–डॉ. तरूण कुमार राय

न्याय की अवधारणा निरंतर एक गतिशील अवधारणा रही है। इसलिए इसे परिभाषित करने के प्रयास में मुख्य कठिनाईयाँ आती है। जो निम्नलिखित है :

1. 'न्याय' शब्द से, भिन्न-भिन्न लोगों ने विभिन्न युगों और विभिन्न स्थानों में विभिन्न अर्थ लगाये हैं। इसलिए इसकी भिन्न-भिन्न व्याख्याओं के कारण, हर मानव के लिए इसके निहितार्थ अलग-अलग हैं।

2. न्याय का विचार एक गतिशील अवधारणा है, परिणामस्वरूप इसके निहितार्थ में कालान्तर में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार हो सकता है कि जो अतीत में न्याय हो, वह वर्तमान में अन्याय हो और जो अतीत में अन्याय रहा हो, वह आज न्याय हो जाए। उस समय एक और समस्या उत्पन्न होती है जब न्याय के अमूर्त विचार का, इसके व्यावहारिक धरातल से, सामंजस्य करना पड़ता है। उदाहरण के लिए हम दैवी या नैतिक न्याय की चर्चा कर सकते हैं, लेकिन यह किन्ही मानकों के अनुरूप नहीं होगा और इस कारण इसे व्यावहारिक रूप में लागू करने के योग्य नहीं समझा जायेगा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'अधिकांश लोग यह समझते हैं कि वे न्याय के अभिप्राय को जानते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि न्याय के बारे में उनकी अवधारणा बहुत अस्पष्ट होती है। इसके बावजूद न्याय की संकल्पना के कतिपय निश्चिय निहितार्थ है। पहली बात तो यह है कि न्याय की अवधारणा के लिए न्यायपूर्ण स्थिति का होना अनिवार्य है, क्योंकि न्यायपूर्ण स्थिति की पूर्व पहचान किये बिना इसका मूल्यांकन करना असम्भव है। दूसरी बात यह है कि न्याय की अवधारणा नैतिकता के साथ जुड़ी हुई है। तीसरे, इसमें लाभ एवं हानि के उपयुक्त वितरण की भावना निहित होती है। इसका तात्पर्य सामान्यतः उन तरीकों से है जिसमें पुरस्कारों और दावों आदि का व्यक्तियों में न्यायपूर्ण वितरण किया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि न्यायोचितता से इसका घनिष्ठ संबंध है। यदि कोई क्रूर एवं तानाशाह शासक अपनी प्रजा को तेल में उबाले और बाद में उस तेल में वह खुद कूद पड़े तो यह अन्यायपूर्ण कार्य होगा,यद्यपि व्यवहार में दोनों में कोई असमानता नहीं है। चौथे, सामान्यतया न्याय, अनुकूल वातावरण अर्थात् लोकतांत्रिक व्यवस्था में कायम रहता है।

न्याय की प्राचीन भारतीय अवधारणा : प्राचीन भारतीय धर्म एवं ग्रन्थों के अन्तर्गत 'न्याय' की अवधारणा शब्द के विभिन्न उद्देश्यों को लेकर इसके कई सिद्धान्त बन गये हैं। इसमें दार्शनिक सिद्धान्त सम्भवतः प्राचीनतम् है। इसके दर्शन में प्राचीन धर्म ग्रन्थों तथा चिन्तकों के विचारों में होते हैं। भारतीय धर्म ग्रन्थों में और भारतीय चिन्तकों के द्वारा न्याय का संबंध धर्म से स्थापित किया गया है। जिसका अर्थ कर्त्तव्य परायणता के विचार से किया जा सकता है। सामान्यतः 'धर्म' शब्द का उपयोग चार संदर्भों में किया जा सकता है। (क) धर्मशास्त्र के प्रसंग में इसका अभिप्राय धर्म से है। (ख) आचार शास्त्र के प्रसंग में इसका तात्पर्य अवगुण के विरूद्ध गुण से है।(ग) विधिशास्त्र के प्रसंग में इसका अभिप्राय कानून से है। (घ) क्रिया के प्रसंग में इसका अभिप्राय कर्त्तव्य परायणता से है।

न्याय की युनानी अवधारणा : न्याय की विशुद्ध दार्शनिक अवधारणा महान यूनानी चिन्तक प्लेटो (427-347 ई. पू.) की कृति 'रिपब्लिक' में मिलती है। यहाँ न्याय का तात्पर्य, लोगों के ऐसे जीवन से है जो कार्यात्मक विशेषीकरण के नियम के अनुरूप हो। इसमें यह भावना निहित है कि "हर व्यक्ति को वह कार्य करना चाहिये जिसके लिए प्रकृति ने उसे बनाया है; एक को एक ही कार्य और फिर हर एक को अपना-अपना कार्य करना चाहिये और वह भी एक न कि अनेक।" दूसरे शब्दों में, इसका अभिप्राय है, "अपना कार्य करना और दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप न करना।" न्याय की दार्शनिक व्याख्या को महान चिंतक अरस्तू ने व्यवहारिक धरातल प्रदान किया तथा उन्होंने कहा कि "अन्याय तब पैदा होता है जब समान व्यक्तियों में असमानतापूर्वक और असमान व्यक्तियों से समानतापूर्वक व्यवहार किया जाता है। "अरस्तू के पश्चात् न्याय की दार्शनिक विचारधारा का प्राकृतिक विचारधारा में विलय हो गया जिसे पहले स्टोइको ने बाद में रोमन विधि शास्त्रियों ने विकसित किया था। स्टोइक यह मानते थे कि विश्व में शासन करने वाला सिद्धांत "विवेक" है। अतः मनुष्य के प्रकृति के साथ सामंजस्य से रहना, मूलतः उस मानक के अनुसार रहना है, जिसे मनुष्य

Scanned with CamScanner

को सिद्ध करना चाहिए। दूसरे शब्दों में रोमन विधि शास्त्रियों ने "न्याय को अंतिम साध्य माना था।" ईसाई धर्म के अविर्भाव के साथ ही प्राकृतिक न्याय के विचार को दैवी स्वीकृति के नियम के साथ जोड़ दिया गया। स्टाइको और रोमनों की दृष्टि में जो शब्द प्रकृति था, वह ईसाई पादरियों के लिये ईश्वर बन गया था। दूसरे शब्दों में "प्रकृति ही ईश्वर है, ईश्वर ही प्रकृति है।" नये ज्ञान के विकास के साथ आधुनिक युग में न्याय की दार्शनिक अवधारणा को आघात पहुंचा फिर भी इसका महत्व पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ। न्याय का विचार अपने दार्शनिक लक्ष्यों के कारण बिल्कुल अमूर्त होते हुए भी उदारवादी विधिशास्त्र के अनुयायियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बना रहा।

न्याय की विश्लेणात्मक अवधारणा : इस विचार धारा के प्रमुख समर्थक, जॉन आस्टिन, जिसने बेंथम एवं हॉब्स से प्रेरणा लेते हुए, यह कहा कि "कानून को एक ओर न्याय और दूसरी ओर उद्दंडता के दमन के मंत्र के रूप में कार्य करना चाहिये। दूसरे शब्दों में, न्याय कानून का तत्कालीन ध्येय है और न्याय के तत्व के अभाव में न्याय दमन का यंत्र बन जायेगा। दूसरे शब्दों में सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय को अपना न्यायपूर्ण निर्णय देते समय निम्न शर्तों को पूरा करना चाहिये– (क) मानव व्यवहार के लिए निश्चित निर्धारित नियम होंगे। (ख) किसी भी प्रकार का विशेष व्यवहार, विशेष परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिये। अन्य विभेद तभी औचित्यपूर्ण होंगे, जब उन्हें बनाते हुए नियमों में सार्वभौमिक तौर पर संशोधन किया जाना चाहिये, अर्थात् किसी प्रकार के विशेष अपवाद नहीं हो सकते, केवल कसौटियों की व्याख्या

हो सकती है, जिससे नये विभेदों का सृजन हो जिन्हें सामान्यतया लागू किया जा सके। (ग) उपचार या व्यवहार में भेद समानुपातिक होना चाहिये, अर्थात् विभेद के होने पर हम इसे न्यायालय में चुनौती दे सकते है।

न्याय की मार्क्सवादी अवधारणा : मार्क्सवादी विचारधारा न्याय के आदर्श और वर्गयुद्ध के सिद्धान्त का एकीकरण करती है। कानूनों की आवश्कता बुर्जुआ वर्ग को येन-केन प्रकारेण सत्ता में बनाये रखने के लिए है। परन्तु सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति के बाद कानूनों का उद्देश्य बदल गया, अब कानूनों की आवश्यकता बुर्जुआ समाज को समाजवादी समाज में स्थानान्तरित करने के लिए होती है। चूंकि, अब सत्ता का एक मात्र स्रोत साम्यवादी दल होता है, इसलिए न्यायालयों को इसकी विचारधारा तथा कार्यक्रमों का अनिवार्यतः अनुसरण करना होता है। मार्क्सवादी विचारधारा के अन्तर्गत न्यायालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे व्यवस्था में, वैचारिक अनुयायियों के उत्साह के साथ कार्य करके, अपने लक्ष्य को प्राप्त करे। वितरणात्मक न्याय की अवधारणा ने समाजवादी लोकतंत्र या संशोधनवादी उदारवाद के वर्तमान युग में विशेष महत्व प्राप्त किया था। इसे अमेरिका के महान विधिशास्त्री जे. डब्ल्यू. चिपमैन और जॉन रॉल्स की रचनाओं में देखा जा सकता है। इस अवधारणा के चलते "लोकतंत्र को एक मानवतावादी आकांक्षा की जगह, बाजार में सन्तुलन कायम करने वाली प्रणाली का रूप दे दिया गया है।" वितरणात्मक न्याय की अवधारणा, न्याय के मानक और समानता के सिद्धांत के मध्य आंगिक संबंध स्थापित करता है। इस संदर्भ में हम जे. डब्ल्यू. चिपमैन की कृतियों की ओर संकेत कर सकते हैं जिसने न्याय के विचार को, मानव की आर्थिक विवेकशीलता के सिद्धान्तों और उपभोक्ता की प्रभुसत्ता एवं व्यक्ति की नैतिक स्वतंत्रता के दावे के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। इसका तात्पर्य है कि "न्याय यह अपेक्षा करता है कि कोई व्यक्ति, किसी अन्य व्यक्ति की कीमत पर लाभ न प्राप्त करे।"

जॉन रॉल्स- जॉन रॉल्स की कृति के प्रकाशन के बाद उसका नाम समग्र बौद्धिक जगत, में प्लेटो, कॉण्ट और जे. एस. मिल जैसे महान विचारकों की श्रेणी में रखा जाने लगा। जॉन रॉल्स उपयोगितावादी दर्शन को संशोधित करते हुए उसके स्थान पर व्यैक्तिक, नैतिक परिप्रेक्ष्य की स्थापना करता है। जॉन रॉल्स के मत में न्याय की अवधारणा के अन्ततः दो सिद्धान्त है। 1. प्रत्येक व्यक्ति को उतनी मूलभूत स्वतंत्रतायें समान रूप से मिलनी चाहिये, जो सभी के लिए स्वतंत्रता की वैसी ही स्थिति के अनुकूल हो, तथा 2.आर्थिक और सामाजिक विषमताओं को इस प्रकार से व्यवस्थित किया जाना चाहिये कि वे, (क) सर्वाधिक वंचित वर्ग के लिए अधिक से अधिक लाभकारी हो, (ख) उन पदों और स्थितियों के साथ संलग्न हो, जो उपयुक्त अवसर की समानता की परिस्थितियों के अधीन सभी के लिए खुले हो। इसके साथ व्यक्ति के आत्मसम्मान की रक्षा की जाये। न्यायसंगत समाज में आत्मसम्मान का आधार मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का खुला वितरण है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जॉन रॉल्स ऐसा समतावादी नहीं है जो सामाजिक और आर्थिक लाभों के समान वितरण की ही उपेक्षा करता हो वरन् वह एक ऐसा समतावादी भी है जो हर एक व्यक्ति मूल्य और स्वायत्तता का आग्रह करता है।

न्याय के तीन व्यापक आयाम हैं, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक। सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में लोकतंत्र के अंतर्वेक्षण से न्याय के अर्थ का इतना विस्तार हो गया कि अब इसके अन्तर्गत मानव जीवन के सभी क्षेत्र आ जाते हैं। व्यक्ति के अधिकारों को, समाज के व्यापक हितों के पक्ष में युक्तियुक्त तरीके से सीमित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में समाज का कल्याण, व्यक्ति के अधिकारों और समुदायों के हितों के मध्य, समन्वय और समाधान पर निर्भर करता है। सामाजिक न्याय का संबंध

Scanned with CamScanner

व्यक्ति के अधिकारों और सामाजिक नियंत्रण के मध्य संतुलन से है ताकि मौजूदा कानूनों के अधीन व्यक्ति की आशाओं की पूर्ति को सुनिश्चत किया जा सके। संकीर्ण दृष्टिकोण से देखने से लगता है कि सामाजिक न्याय व्यक्ति के कुछ अधिकारों को सामाजिक हित की बलि वेदी पर चढ़ाया जा रहा है, परंतु व्यापक परिप्रेक्ष्य पर देखने पर सामाजिक न्याय के विचार का उद्देश्य न केवल व्यक्ति और समाज के उद्देश्यों में समाधान लाना है या विरोध की स्थिति में समाज के हित को अधिमान्यता प्रदान करना है, ताकि वह सामाजिक परिवर्तन का आवश्यक अंग बन जाये जिसके लिए बहुतों के हित की खातिर किसी वस्तु की कुर्बानी देनी पड़ेगी। सामाजिक न्याय की अवधारणा अतिव्यापक है जिसके अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा से लेकर गरीबी और निरक्षरता के उन्मूलन तक कुछ भी हो सकता है, एफ. ए. हॉयक के अनुसार, "ऐसी प्रणाली में जिसमें हर एक को अपने ज्ञान को अपने प्रयोजन के लिए प्रयोग करने की अनुमति दी जाती है, वहाँ सामाजिक न्याय की अवधारणा थोथी एवं निरर्थक है क्योंकि इसमें किसी की इच्छा अलग-अलग लोगों की सापेक्ष आय का निर्धारण नहीं कर सकती या किसी को रोक नहीं सकती कि वे आंशिक रूप में किसी संयोग पर निर्भर हो। अवसर की समानता का विचार इस लक्ष्य के बावजूद न्याय के सिद्धांत को काटता है, यह आकर्षक प्रतीत होता है। लेकिन एक बार जब इसको उन सुविधाओं से आगे बढ़ाया जाता है जिन्हें अन्य कारणों से सरकार द्वारा प्रदान किया जाता है, तो यह पूर्णरूप में एक छलपूर्ण आदर्श बन जायेगा और इसे प्राप्त करने की कोई ठोस कोशिश एक भयानक सपना सिद्ध होगा।

आर्थिक न्याय, सामाजिक न्याय का सहगामी तत्व है। आर्थिक न्याय की अवधारणा के रूप में स्वतंत्रता का समस्त विचार ही राजनीति के क्षेत्र को पार करके आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में पदार्पण करता है। ऐसा कहा जाता है कि यदि स्वतंत्रता, आर्थिक न्याय प्राप्त करने के मार्ग में बाधक है तो वह निरर्थक है। एक भूखे या ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसे मानव-गरिमा से वंचित किया गया है, राजनीतिक स्वतंत्रता एक खोखला और मिथ्या शब्द है। आम बोलचाल की भाषा में आर्थिक न्याय की अवधारणा का तात्पर्य यह है कि आर्थिक मूल्यों के आधार पर लोगों के मध्य कोई विभेद न किया जाय। आर्थिक न्याय की अवधारणा का संबंध अनिवार्यतः भूखों को रोटी, नंगों को कपड़ा और बेघर को रहने के लिए मकान देना और प्रगति के लिए, उन्हें अवसर प्रदान करना है। सामाजिक न्याय की भाँति आर्थिक न्याय की अवधारणा भी मार्क्सवाद और उदारवादी विचारकों के मध्य विवाद का विषय रही है। उदाहरण के लिए, समाजवाद की अवस्था में "हर एक को उसके कार्य के अनुसार मिलना" और समाजवाद की अंतिम अवस्था अर्थात साम्यवाद में "हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार कार्य लेना" और हर एक को उसकी आवश्यकता मिलना" जैसा मार्क्सवादी सूत्र वितरण के न्यायपूर्ण सिद्धांत एवं कमजोर तथा अपंग लोगों, जब वे कार्य नहीं करते, की सहायता करने के मानवतावादी मानक के विरुद्ध होगा। इसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देशों के न्यायालयों ने विधिक और युक्तियुक्त सीमाओं के जिन मानकों का निर्धारण किया है, उससे आर्थिक न्याय का समस्त विचार, प्रवाहमय और शायद एकदम निर्थरक हो जायेगा। न्याय की अवधारणा और इसके बारे में विचारों को राष्ट्रीय स्तर पर, आर्थिक एवं सामाजिक हितों और दूसरी ओर व्यक्तियों का सामूहिक हितों के मध्य वर्तमान समय के साथ संतुलन और सामन्जस्य स्थापित करना होगा। डॉ. चन्द्र भूषण मिश्र के अनुसार, "न्याय एक बहुरंगी अवधारणा है। जो समय एवं परिस्थितियों के साथ बदलती रहती है। न्याय की अवधारणा को परम्परागत एवं सैद्धान्तिक सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता क्योंकि यह एक गतिशील अवधारणा है। माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का कथन, "सबका साथ, सबका विकास और सबका विश्वास, को न्याय की अवधारणा अपने में समाहित करती है। जो सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्राप्त करने का एक सार्वभौमिक सूत्र है।"

संदर्भ

1. जेम्स ब्राइस, 'मार्डन डेमोक्रेसीज,' खण्ड-2 लंदन, 1921
2. हेरोल्ड पॉटर, 'डी क्वेस्ट आफ जस्टिस,' लंदन 1951
3. डेविड मिलर, 'सोशल जस्टिस,' ऑक्सफोर्ड, 1976
4. सी. के. ऐलन, आस्पेक्ट्स ऑफ जस्टिस, लंदन, 1955
5. पी. बी. मुखर्जी, थ्री प्रिंसिपल प्रॉब्लम ऑफ इंडियन कांस्टीट्यूशन, नई दिल्ली, 1972
6. ई. आर. बीवेन, स्टोइक्स एण्ड स्किप्टिक्स
7. सी. बी. मैक्फर्सन, डेमोक्रेटिक थियरी-एसेज इन रिट्राइवल, लंदन, 1976
8. जे. डब्ल्यू चिपमैन, जस्टिस एज केयरनेस, छठा भाग, न्यूयार्क, 1963
9. जॉन रॉल्स, ए थियरी ऑफ जस्टिस, हावर्ड, 1971
10. एफ.ए. हॉयक, लॉ लेजिस्लेशन एण्ड लिबर्टी, शिकागो, 1976

–माधवेन्द्र तिवारी
शोध-छात्र एवं सहायक प्राध्यापक (विधि),
रा.गा. शास.स्नातको. महाविद्यालय, अम्बिकापुर (छ.ग)

–डॉ. तरूण कुमार राय
शोध निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक (विधि),
रा.गा. शास. स्नातको. महाविद्यालय, अम्बिकापुर(छ.ग.)

Scanned with CamScanner